शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण कला तथा अलंकरणों का स्वरूप

डॉ0 मनोज कुमार
ईमेलः *manojgbss0@gmail.com*

प्राप्तिः 25.02.2024
स्वीकृतः 24.03.2024

8

सारांश

गुप्त कालीन शासकों ने सुदृढ़ राजनीतिक शक्ति के आधार पर एक सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की थी। इस विषेशता के कारण ही इस काल में सामाजिक शन्ति की स्थापना हुई, व्यापारिक प्रगति से संपन्नता आई तथा देशवासियों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। राजनीतिक स्थिरता तथा सामाजिक संपन्नता के कारण साहित्य, कला, धर्म, दर्शन तथा विज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक संरचना और नए–नए कीर्तिमान, स्थापित हुए। इन्हीं शास्त्रीय विविधताओं के कारण तथा लावण्य गुप्तकाल शास्त्रीय युग भी माना जाता रहा है। वस्तुतः गुप्तकाल में प्रशासन, व्यापार, धर्म तथा साहित्य सृजन के अनुरूप ही कला के विविध क्षेत्रों में अद्भुत उन्नति हुई थी। इसीलिए इस युग को भारतीय इतिहास के स्वर्णिम युग की संज्ञा भी दी जाती है।

मुख्य बिन्दु

भारतीय, सांस्कृति, शास्त्रीय, राजनीतिक, राष्ट्रीय।

कला के विविध क्षेत्रों में गुप्तयुगीन शिल्पियों ने भारतीय में मूर्तियों को बनाने की कला के विकास को एक आयाम दिया। संरचना, शैली तथा भाव संबोध की दृष्टि से इस कालखण्ड की यह अपने समग्र रूप में भारतीय कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। कला के अभिप्रायों की दृष्टि से अनेक नवीन मान्यताएँ स्थापित होने के साथ–साथ राष्ट्रीय–भावना से गहराई से जुड़ी इस युग की कला पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कालों की कला से पृथक अस्तित्व बनाने में सफल रही हैं। राष्ट्रीय अनुभूतियों, भावों तथा आदर्शो के अतिरिक्त धार्मिक तथा सांस्कृतिक संचेतना एवं आध्यात्मिक तत्वों की सफल संरक्षिका के रूप में गुप्त समय की कला विविध रूप से विकसित होकर पराकाष्ठा पर पहुँची। इस अर्थ में 'गुप्त–युग' पुनर्जीवन का नहीं बल्कि उत्कर्ष का कालखण्ड था।[1]

इस युग में मूर्ति–कला के उत्कर्ष का प्रमुख कारण गुप्त शासकों द्वारा ब्राह्मण–धर्म को राजकीय संरक्षण दिया जाना था। सहिष्णुता के उच्चतम आदर्शों के कारण बौद्ध तथा जैन धर्म का विकास भी अबाध रूप में चलता रहा। अधिकांश गुप्त शासक ब्राह्मण मतावलम्बी थे। परन्तु समाज में ब्राह्मण–धर्म के व्यापक प्रचलन के साथ ही समाज का एक बड़ा वर्ग बौद्ध तथा जैन–धर्म में आस्था रखता था। उसके विकास में भी संलग्न रहा था। गुप्त अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। गुप्त युग की भक्ति–धारा ने ब्राह्मण–धर्म के साथ–साथ बौद्ध तथा जैन धर्मों को भी अनुप्राणित

किया। इन विविध धर्मो में अनेक सम्प्रदायों और मतों के अस्तित्व में आने के फलस्वरूप अनेकों देवी–देवताओं की कल्पनाएँ बनीं जिनका प्रयोग मूर्ति–निर्माण के प्रमुख विषय के रूप में किया गया।

भारत के विभिन्न भागों में व्यापक स्तर पर गुप्त शासकों के समय की कला का विकास हुआ। गुप्तों का काल राजनीतिक परिवर्तनों का परिच्छेद था। कला के विविध रूपों में आकर्षक रचनाऐं भी इस युग में हुई। भारत के उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में अधिक संख्या में मिली मूर्तियों की संरचना, शैली तथा भाव संवेगों के आधार पर पूर्ववर्ती कला से तुलना के साथ देखने पर गुप्तकालीन कला की मूलभूत विषेशताएँ स्पष्ट होती हैं।[2]

स्मिथ महोदय ने यह विचार व्यक्त किया था कि गुप्तों के समय में कलात्मक अभिवृद्धि भारत में विदेशी सभ्यता के सम्पर्क से ही थी। प्राचीन काल में इस बात में सन्देह नहीं कि सहर्षों वर्षों से भारत का व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध पश्चिमी से रहा था। गुप्तकाल के पूर्व भी विदेशी कला के तत्वों तथा अनेक परम्पराओं ने भारतीय कला को प्रभावित किया। लेकिन इस सबके विपरीत गुप्त काल की मूर्ति–कला किसी विदेशी प्रभाव में विकसित नहीं हुई थी। यथार्थ में पूर्ववर्ती कला के विदेशी तत्वों को गुप्तों के समय के शिल्पी ने इस प्रकार से आत्मसात कर लिया था कि उनकी स्वतन्त्र स्थिति समाप्त सी प्रतीत होती है। इसके पूर्व कुशाण काल में जिस गन्धार–कला क्षेत्र का विकास हुआ था उसकी शैली विदेशी थी। गुप्तों के समय की मूर्ति–कला भारतीयता के तत्वों से ओत–प्रोत रही। मथुरा की यद्यपि भारतीय मूर्ति कला शैली में भी कुषाणों के समय सूर्य–मूर्तियों को लम्बा पायजामा, बूट, तलवार आदि धारण किये हुए ईरानी प्रभाव से युक्त प्रदर्शित किया गया हैं। यह पूर्व की भारतीय कला परम्परा से सम्बन्धित नहीं था। किन्तु गुप्त युग में इन विदेशी तत्वों को अति सूक्ष्मता के साथ भारतीय कला में संजोकर अन्य भारतीय तत्वों के साथ समावेशित करके भारतीय रूप में प्रस्तुत किया गया। तदन्तर निर्मित मूर्तियों का भी मानदण्ड बढ़ा। कुषाणों के समय भारतीय कला के विविध रूपों में आत्मसात किया गया। विदेशी तत्वों को आकर्षक तथा कलात्मक ढंग से अनेक सज्जाओं के साथ प्रदर्शित करने का महत्व गुप्तों समय की शिल्पी की मौलिक प्रतिभा को ही हैं। उदाहरण के लिए देवत्व का आभास होने के लिये बुद्ध–मूर्ति में प्रभा मण्डल का प्रदर्शन गन्धार क्षेत्र की कला शैली की एक महत्वपूर्ण विषेशता थी। जिसे गुप्त–काल में गोलाकर तथा अण्डाकार रूपों में बेल–बूटों की नक्काशियों से अलंकृत करके आकर्षक रूप में प्रदर्षित करने का परम्परा इस युग में बढ़ी।[3]

गुप्तों के समय की मूर्ति–कला की अन्य प्रमुख विषेता यह थी कि देवी–देवताओं की मूर्तियों में आध्यात्मिक भावों में अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया। मूर्तियों से आध्यात्मिक भाव सम्प्रेशित होता हैं। वस्तुतः इन मूर्तियों से ही धार्मिक उपासना को सरल रूप प्रस्तुत करना ही शिल्पी का ध्येय था। फलस्वरूप गुप्त काल की देव–मूर्तियों में आध्यात्मिक आभा तथा आन्तरिक शान्ति के तत्व व्याप्त हैं। मथुरा, सारनाथ तथा सुल्तानगंज से प्राप्त इस काल की बुद्ध–मूर्तियाँ मथुरा, सारनाथ तथा सुल्तानगंज से प्राप्त की गई बुद्ध–मूर्तियों में जिस शांति तथा सन्तुष्टि की दिखाई देती हैं, वह यह प्रामाणित करती है कि इसके रचनाकार का दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा। वह शरीर पर आत्मा की विजय प्रदर्षित करना चाहता था। सारनाथ की आकर्षक बुद्ध–मूर्ति में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति, स्नेह

मुस्कुराहट एवं गम्भीर भावपूर्ण मुद्रा इस काल की मूर्ति–कला की पराकाष्ठाको सफलता सिद्ध करती है।

इस रूप में सौन्दर्यता के उच्चतम शिखर पर निर्मित इन गुप्तयुगीन मूर्तियों में बाह्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य को प्रस्तुत करने में षिल्पी के कौशल की उच्चता दिखाई देती है। मूर्तियों को सजाने तथा सँवारने का ओजपूर्ण प्रयास इस युग की कला की एक महत्वपूर्ण देन हैं। उदाहरण के लिए कुषाणयुगीन की मथुरा कला में मूर्तियों के सिर पर सुरूचिपूर्ण केश–सज्जा प्रदर्षित करने की परम्परा नहीं थी। परन्तु गुप्तकाल में शिल्पियों ने एक नया प्रयोग कर मूर्ति सौन्दर्य–रचना में अलंकरणों के प्रयोग में वृद्धि की। पुरूष–मूर्तियाँ में लटकते हुए कुंचित केशों को दिखाया गया है। नारी–मूर्तियों में अलकजाल धारण कर रखा है। शरीर पर धारण किये जाने वाले वस्त्रों को भी पारदर्शक रूप में इस रूप में दिखाया गया है कि उससे झलकते हुए शरीर के सुकोमल अंग–प्रत्यंग आकर्षक लगते हैं। इस काल की मूर्तियों में भाव बोध, रचना बनावट की सुघड़ता, सूक्ष्म वस्त्रों का प्रयोग तथा नपे–तुले वस्त्रों के प्रयोग के कारण अलंकारिक सौन्दर्य अद्भुत बन गई हैं।[4]

गुप्तों के समय की मूर्ति–कला में एक सार्वभौमिक विषेशता दिखायी देती हैं। यद्यपि इनमें कुछ प्रादेशिक अन्तर भी रहे हैं। भारत के एक बड़े भू–भाग पर गुप्तों का शासन होने के कारण व्यापक स्तर पर मूर्तियाँ का निर्माण हुआ। भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त मूर्तियों की सरंचना तथा शैली को एक ही रूप में मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता हैं। प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रीय निर्माण की शैलियों से मूर्तियों का प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। निर्माण शैली में एकरूपता तथा विभिन्नता को स्पष्ट करते हुए समस्त मूर्तियों का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित अध्ययन करना उचित होगा।

उत्तर–भारतीय मूर्ति निर्माण केन्द्रों में मथुरा तथा सारनाथ इस कला के केन्द्र रहे। मथुरा मूर्ति कला की उन्नति का सर्वोत्कृष्ट काल खण्ड कुषाणों का शासनकाल था। उस समय में मथुरा की लाल चित्तीदार बलुये पत्थर की बनाई गई विविध मूर्तियाँ देश के प्रत्येक क्षेत्र में जा रही थीं। गुप्तों के समय में भी मथुरा में मूर्तियों का सृजन होता रहा। गुप्तों के समय में मथुरा केन्द्र पर बनीं मूर्तियों में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियाँ मिली हैं। किन्तु गुप्त युग की प्रारम्भिक मूर्तियों में साधारण विषेशताऐं ही हैं। इन मूर्तियों में गुप्त तथा कुशाणकालीन मूर्ति–कला का संयुक्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। 129 गुप्त संवत् अर्थात 449–50 ई0 में गुप्त सम्राट कुमारगुप्त के शासन में बनी 'मनकुँवर की बुद्ध मूर्ति' कुषाणकाल की मथुरा–कला में बनी तीर्थकर प्रतिमाओं का प्रत्यक्ष अनुकरण ही होता हैं। मूर्ति में शारीरिक अनुपात, वक्ष का गठन, मुख पर भाव तथा गोलाई का ढंग कुषाणकालीन मूर्तियों के समान ही है।[5]

परन्तु सिर के भाग पर दिखाया गया सपाट उषर्णीय, यह बोध कराता है कि यह मूर्ति गुप्तों के समय शैली से प्रभावित है। मनकुँवर की बुद्ध–मूर्ति तथा सारनाथ की बुद्ध–मूर्ति में परस्पर गुप्तकाल के लक्षण प्रत्यक्ष रूप में आँकी जा सकते हैं। सारनाथ की बुद्ध–मूर्ति मनकुँवर की बुद्ध–मूर्ति की तुलना में अधिक प्रभावशाली ओजस्वी, भावमय तथा सहज तथा आकर्षक है। गुप्तकाल के आरम्भ मे मथुरा केन्द्र पर मूर्तियों का निर्माण कुषाण शैली में ही हुआ। तदन्तर मथुरा मूर्ति कला केन्द्र भी गुप्त शैली से प्रभावित हुआ।

मथुरा में बनाई गई गुप्तकाल की मूर्तियों की अपनी कुछ विशिष्टताएँ हैं। कुषाणों के समय की मूर्तियों का प्रभामण्डल साधारण था। परन्तु गुप्तकाल में अलंकृत प्रभामण्डल की परम्परा आरम्भ हो गयी। दूसरी विषेशता बुद्ध के त्रिचीवर की बनावट है। यह परम्परा स्पष्ट कर देती है कि यह मूर्ति मथुरा में बनाई गई है। अन्तरवासक (अधोवस्त्र) कमर में बाँधा गया है। संघाटी द्वारा दोनों कंधों को ढका गया है तथा घुटने के नीचे तक फैली है। कुषाणों के समय की मथुरा की मूर्तियों के दाहिने कन्धों पर संघाटी को नहीं दिखाया गया है। परन्तु गुप्तकाल में दोनों कन्धे से ढके हैं।[6]

इन लक्षणों से युक्त मूर्तियों के साथ–साथ कुछ अन्य मूर्तियाँ भी बनाई गई हैं जिनमें कुषाण तथा गुप्त कला की मिश्रित विषेशताएँ दिखाई देती हैं। इस क्रम में बोधगया से मिली बुद्ध–मूर्ति जो लाल पत्थर से बनी है। बनावट की दृष्टि से यह गुप्तों के समय मथुरा–कला केन्द्र में बनी मूर्ति है। इस मूर्ति की रचना षैली के बारे में जैसा वी0पी0 सिंह ने लिखा है कि ''इस मूर्ति का शरीर, तनी हुई आकृति आदि मथुरा शैली का प्रभाव दिखाते हैं। इस मूर्ति की अधखुली आँखें तथा मुख पर आध्यात्मिक आभा, होठों पर करूणामयी मुस्कान, गुप्तों के समय की मूर्ति बनाने की कला विशिष्ट देन ही हैं।'' इस रूप में यह मूर्ति संक्रमण काल की लगती है। इस समय पर मथुरा तथा गुप्त मूर्ति कला में परस्पर रही थीं। बोधगथा की इस गुप्तों के समय मूर्ति में कुषाणों के समय की मूर्ति कला के शारीरिक लक्षण एवं गुप्तों के समय संयत सौन्दर्य तथा आन्तरिक आध्यात्मिकभाव पूर्णतः दिखाई देता है। किन्तु पाँचवी शती ई0 के बाद बनी मूर्तियों में कुषाण मूर्ति कला दृढता की तथा कडापन के स्थान पर मूर्तियों में शारीरिक की कोमलता, स्वाभाविक, सहजता तथा भावों की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से दिखाई देती है।

गुप्तों के समय मूर्ति–निर्माण का एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र सारनाथ था। सारनाथ में बनाई गई मूर्तियों में अधिक संख्या बौद्ध–मूर्तियों की है। यथार्थ में सारनाथ केन्द्र पर बहुत पूर्व से ही एक बौद्ध मूर्ति कला केन्द्र के रूप में अपनी स्थापना कर ली थी। इसका मूल कारण यह था कि बुद्ध ने इस स्थान पर अपना पहला धर्मोपदेष प्रदान किया था। मूर्ति कला केन्द्र के रूप में यह मथुरा में बनी मूर्तियों की शैली के आरम्भ से पूर्व ही अस्तित्व में था। पूर्व में चुनार के बलुआ पत्थर से निर्मित अशोक के स्तम्भ तथा अन्य कलाकृतियों इसके साक्ष्य हैं। कुषाणों के समय में मथुरा में बनी मूर्तियों का निर्यात होने लगा था। परन्तु एक प्रमुख बौद्ध केन्द्र के रूप में गुप्तकाल में सारनाथ ने मूर्ति कला–शैली को संजोया वह तदन्तर मगध–वंग मूर्ति कला–शैली के स्वरूप निर्धारण का माध्यम भी बना।

मूर्तियों की शारीरिक संरचना, शैली तथा भावों का बोध सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली की विषिष्टता थी। मथुरा शैली से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं था। सारनाथ मूर्ति कला में बनीं मूर्तियाँ उत्कृष्ट सौन्दर्य तथा कुशल अभिव्यंजना की विषेशताओं से प्रभावशाली रही हैं। इन मूर्तियों में आध्यात्मिकता का भाव सफल रूप अंकन किया गया है। सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में बनी बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियों में शारीरिक अंगों की संरचना अद्भुत रूप में है। सुडौल तथा इकहरा शरीर इन मूर्तियों के घनत्व के बोझ से दबा नहीं है। शारीरिक बनावट में सुधार परिष्कार की दृष्टि से सारनाथ केन्द्र की मूर्तियाँ मथुरा मूर्तियों से भी श्रेष्ठ रही हैं। मथुरा में बनी मूर्तियों में शरीर का भारीपन लक्षण सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में समाप्त कर दिया गया था।[7]

अंग–प्रत्यंगों को सुरूचिपूर्ण एवं भाव प्रदर्षित करने का प्रयास किया गया। सारनाथ मूर्ति निर्माण शैली में बनी मूर्तियों में मुखमण्डल पर कोमलता का भाव है। चेहरे को कुछ लम्बा दिखाया गया है। शारीरिक संरचना इस रूप में बुद्ध–मूर्तियों के भावों के सदैव अनुकूल ही थीं। सारनाथ में निर्मित बुद्ध–मूर्तियों में शान्त भाव को शिल्पी का अभीष्ट ध्येय दिखाई देता है। इस तथ्य का कारण यही रहा कि सारनाथ में बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ अधिक संख्या में बनाई गई। इनमें सदैव शान्तरस के भाव को प्रस्तुत करना ही बौद्ध धर्म की भावना के अनुकूल था। सारनाथ की मूर्तियों में वस्त्र–संरचना भी मथुरा मूर्ति कला की अपेक्षा कुछ नवीन लक्षणों के रूप प्रदर्षित हुई है। मथुरा में बनी मूर्तियों में वस्त्रों की चुन्नटें सारनाथ शैली में समाप्त कर दी गई।

सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में बनी अनेक मूर्तियाँ शिल्प के दृष्टिकोण से उत्कृ श्ट रहीं हैं। गुप्त काल में सारनाथ केन्द्र पर सुन्दर तथा सौम्य मूर्तियाँ में बुद्ध–मूर्तियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। धर्म–चक्र–प्रवर्तन की मुद्रा में बनी मूर्ति के मुखमण्डल पर असीम शान्ति, दिव्यता का बोध, कोमलता तथा गम्भीरता का भाव है। अंग–प्रत्यंग को सुकुमारता तथा सौन्दर्य के साथ इहलौकिकता से सम्बद्ध किया गया है। सारनाथ केन्द्र की परिष्कृत मूर्ति निर्माण कला–शैली की परम्परा आगे चलकर धीरे–धीरे क्षीर्ण होती गई। इसकी शिल्प–परम्परा का निग्दर्शन

विषेश तथा बौद्ध–मूर्तियों तक ही सीमित रहा। तदन्तर निर्मित होने वाली ब्राह्मण–मूर्तियों में तो सारनाथ के तत्वों का प्रयोग नहीं किया गया। उदाहरण के लिए पाँचवी शती ई0 में बनाई गई एरण की वराह–मूर्ति में घनत्व के भार तथा रेखाओं के प्रयाग का क्षीर्ण प्रवाह वन्य पशुओं की शारीरिक संरचना निर्माण में भारीपन का बोध कराता है। वराह के साथ–साथ नारी–रूप में प्रदर्षित पृथ्वी की आकृति में भी नारी के शरीर की कोमलता तथा अंग–प्रत्यंगों की आकर्षक शोभा अर्थात नारी–काया को भी प्रस्तुत नहीं किया गया हैं।[8]

गुप्तों के समय मूर्ति निर्माण कला–केन्द्रों में पाटलिपुत्र की भी गणना होती रही है। पाटिलपुत्र केन्द्र में प्रायः धातु–मूर्तियाँ बनाई गई थीं। कम संख्या में प्रस्तर मूतियाँ बनाई गईं। नालन्दा के प्राप्त धातु–मूर्तियों तथा सारनाथ की मूर्तियों की सरंचना तथा शैली गत लक्षणों में काफी सीमा तक समानता दिखाई देती है। पाटलिपुत्र शैली में बनी मूर्तियों की विकृत केश, सीधी भौंहें तथा उष्णीव का प्रस्तुतीकरण अंकन दिखाई देता है। पाटलिपुत्र केन्द्र पर बनी मूर्तियों का महत्व रहा है।5 मौर्यकाल में पाटलिपुत्र में मूर्तिकला की अपनी कोई विशिष्ट शैली नहीं थी। मौर्यकाल के बाद पाटिलपुत्र से लाल पत्थर से बनीं मूर्तियों को मथुरा से लाया गया प्रतीत होता है। गुप्तकाल में पाटिलपुत्र की लाल पत्थर से बनी मूर्तियाँ

बहुत कम संख्या में मिली हैं। विषेश रूप में मगध क्षेत्र से। पाटलिपुत्र मूर्ति निर्माण में बनी मूर्तियों में सुल्तानगंज (भागलपुर) के समीप से मिली तांबे की बनी विशाल बुद्ध–मूर्ति का स्थान प्रमुख रहा हैं। शान्तिभाव से मुस्कान, करूणा का बोध, तथा आध्यात्मिक आभा से युक्त साढ़े सात फीट ऊँची बुद्ध की यह ढली हुई मूर्ति बर्मिंघम संग्रहालय, लंदन में प्रदर्शित की गईं। इस मूर्ति के आध यात्मिक भावों को सरल तथा सहजता से प्रस्तुत किया गया है। उससे शिल्पियों के आध्यात्मिक भावों की भारतीय कल्पना की परम्परा बोध होता है। सुल्तानगंज में बनी इस ताम्र–मूर्ति तथा सारनाथ की

बुद्ध–मूर्ति की बनावट की शैली में भी काफी सीमा तक एकता दिखाई देती हैं। सारनाथ की इस मूर्ति की तुलना में सुल्तानगंज की बुद्ध की मूर्ति में गम्भीर भावों कुछ का बोध अधिक है।

गुप्तकाल में गंगा–यमुना का दोआब क्षेत्र मध्यप्रदेश का भाग तथा मालवा में भी मूर्ति निर्माण किया जाता रहा। गुप्तों के समय मूर्ति कला की परम्परा ने कुछ सीमा तक प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए भारत कला भवन, वाराणसी की कार्तिकेय–मूर्ति, सारनाथ के संग्रहालय में प्रदर्षित लोकेश्वर की मूर्ति, मध्यप्रदेश में प्राप्त एक मुखलिंग, ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्षित कुछ मूर्तियाँ सारनाथ मूर्ति के अत्यन्त निकट रही हैं। लेकिन इन मूर्तियों में आध्यात्मिक आभा का अभाव दिखाई देता है। इनकी शारीरिक संरचना भी सारनाथ मूर्तियों जैसी सुकुमार नहीं हैं। इन मूर्तियों में भारीपन है। उदाहरण के लिए देवगढ़ की मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध मूर्तियों के शिल्प के बारे में यह प्रमाणित होता है। साथ ही मध य प्रदेश के इस क्षेत्र में पारम्परिक लोक–कलाओं का भी प्रभाव देखा जा सकता है। कोसम (कौशाम्बी) से मिली शिव–पार्वती की मूर्ति, इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्षित रामायण के दृष्यपट1, गुप्त–शिल्प से अलग ही हैं। इनमें शारीरिक सौष्ठव तथा आध्यात्मिक भावों का अभाव है। लेकिन मालवा की मूर्तिकला में नवीन तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है। परन्तु साँची की प्राचीन परम्पराओं का भी प्रभाव रहा। उदयगिरि, मंदसौर, भिल्सा आदि से प्राप्त अधिकांश मूर्तियों में भव्यता तथा भारीपन दिखाई देता है। जैसे उदयगिरि की विशाल वराह–मूर्ति का शिल्प से गुप्तों के समय शिल्प का प्रतिरूप है। इसमें गुप्तों के समय में मध्यप्रदेश के विविध शिल्पों की विषेशताएँ दिखाई देती हैं। परन्तु सौन्दर्य तथा भावों के प्रस्तुतीकरण में यह मूर्ति गुप्तों के समय आदर्शों से सर्वथा भिन्न है। मूर्ति कला में नारी के रूप में वराह द्वारा पृथ्वी को कन्धों पर उठाया गया है। शारीरिक शक्ति तथा प्रभाव का सम्मिश्रण हुआ है। पृथ्वी की आकृति में नारी–शरीर की सरलता तथा कोमलता का अभाव है। यह मूर्ति छठी से आठवाँ शताब्दी में बनी हुई बादामी, एलोरा और एलिफेन्टा से पूर्व की कही जा सकती है।[9]

भारत के पूर्वी भाग में सारनाथ की कोमलता तथा आध्यात्मिक आभा के रूप में भावनाओं का सम्प्रेषण हुआ है। बिहार में सुल्तानगंज से प्राप्त बुद्ध–मूर्ति, राजगिरि, के के निकट मनियार मठ की मूतियाँ, तेजपुर के निकट प्राप्त हुई दहपरबतिया में गंगा–युमना की अन्य मूर्तियाँ। क्षेत्रीय कला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इन मूर्तियों की शारीरिक रचना सारनाथ कला से प्रभावित है। साथ ही साथ भावनाओं को अभिव्यक्ति किया गया है। गुप्तों के समय की मूर्ति निर्माण की शिल्प–परम्परा में बनाई गई मूर्तियाँ गुजरात तथा राजस्थान के अनेक भागों से मिली हैं। इन मूर्तियों पर उत्तर भारतीय के मूर्ति निर्माण शिल्प शैली का प्रभाव दिखाई देता है। कोटा राज्य के निकटवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त हुई मूर्तियों में आकर्षक शिल्प प्रयोगों के साथ स्थानीय वस्त्रांकन का प्रयोग किया गया हैं। साथ ही अधि ाकांश मूर्तियाँ कुछ रूखापन लिये कुछ क्षीर्ण रेखांकन भी दिखाई देता हैं।

दक्षिण भारत में भी गुप्तों के समय मूर्ति निर्माण शिल्प के उदाहरण में बम्बई के परेल से मिली शिव–मूर्ति प्रमुख है। इस मूर्ति के एक ओर लोक जीवन का भाव बोध है। दूसरी ओर निरन्तरता का आभास भी है। दक्षिण भारत गुप्तों के समय मूर्ति निर्माण षिल्प के उदाहरण बादामी की गुफाओं में भी मिले हैं। बादामी के मूर्ति शिल्प में मूर्तियों का शरीर का भाग बड़ा है। भारीपन दिखाई देता

है। शिल्प–विधान शिल्प के अनुसार ये मूर्तियों परेल की मूर्ति से नीचे स्तर की हैं। दक्षिण भारत में गुप्तों के समय अजन्ता, कन्हेरी, एहोल आदि कई स्थलों की कुछ मूर्तियों को भी गुप्त–शैली में समायोजित करने का प्रयास किया गया है। इन अनेक स्थानों से मिली हुई मूर्तियाँ, अलंकरणों, परम्पराओं के अभिप्रायों सिद्धान्त रूप में गुप्तों के समय मूर्ति कला के लक्षणों की प्रतिमूर्ति हैं। साथ–साथ मूर्तियों में सौम्यता, भावों की अभिव्यक्त एवं आकर्षक मुद्राओं के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है।[10]

गुप्तकाल में वैष्णव एवं भागवत धर्म का अभ्युत्थान हुआ था। इस कालखण्ड में अनेक पौराणिक देवी देवताओं मूर्तियाँ बनाई गईं। साथ–साथ धार्मिक सहिष्णुता को देखते हुए बौद्ध, जैन तथा लोक–धर्मों से जुड़ी हुई अनेक देव–मूर्तियों का निर्माण हुआ। आध्यात्मिक आभा तथा शारीरिक सौन्दर्य से युक्त इन मूर्तियों में धार्मिक परम्पराओं तथा लोक विष्वास के भाव का निर्वाह उत्कृष्ट शिल्प के उदाहरण हैं।

अधिकांश गुप्त सम्राट वैष्णव थे। उन्होंने 'परम भागवत' उप विधारण थी। शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी आदि प्रतीकों का प्रयोग अंकन के लिए इनकी मुद्राओं पर किया गया। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख एवं बुधगुप्त का एरण स्तम्भलेख विष्णु की उपासना से ही आरम्भ होता है। यह तथ्य है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज के स्थापित किया था। भीतरी लेख में स्कन्दगुप्त के शासन में विष्णु–मूर्ति को स्थापित किया गया था। इसी क्रम में गुप्त सम्राटों के शासन में वैष्णव–धर्म के विकास के साथ–साथ विष्णु की अनेक खड़ी, बैठी तथा शयन मूर्तियों को भी बनाया गया।

मध्य प्रदेश में भिल्सा के निकट उदयगिरि गुफा के दीवारों पर उत्कींर्ण की गई विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति की बनावट और शैली धर्म प्रधान न होकर कला पूर्ण है। गदा तथा चक्र–धारण करके किए इस हाथों को रखे हुए विष्णु–मूर्ति के निर्माण में उत्तर भारत के शिल्प कौशल का प्रयोग हुआ है। एरण से प्राप्त अन्य विष्णु–मूर्ति में गले में हार तथा केयूर को दिखाया गया है।

गुप्तों के समय की मूर्ति कला में बनीं विष्णु–मूर्तियाँ अपने स्थानक, आसन तथा शयन मुद्राओं के रूप में द्विभुजी, चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी रूप में आकर्षक ढंग से बनी हैं। देवगढ़ से प्रति नाग पर विराजित विष्णु–मूर्ति में लक्ष्मी को विष्णु के चरणों को दबाते हुए प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में अनन्तशायी विष्णु–मूर्ति में कुंडल, वनमाला, मुकुट, हार तथा केयूर आदि अलंकरणों से सज्जित हैं। इसमें विष्णु के दोनों हाथों में शिव, इन्द्र तथा नाभि से निकले हुए कमल पुष्प पर ब्रह्मा को बैठा हुआ दिखाया गया है। चरणों को दबाती हुई लक्ष्मी को दिखाई किया गया है। संरचना, शैली, भाव बोध एवं पौराणिक मान्यताओं के क्रम में यह सर्वोत्तम रचना है। शरीर की संरचना को स्पष्ट भावों के साथ सहज और आकर्षक भावों में दिखाया गया है।

इस काल की विष्णु की मानवीय मूर्तियों की तुलना में वराह, नरसिंह तथा वामन इत्यादि अवतारों की मूर्तियों अधिक संख्या में है। वराह के अवतार की मूर्तियों में प्रदर्षन का भाव वराह तथा नृवराह दोनों ही रूपों में हुआ है। वराह के अवतार की अन्य मूर्ति में देवता का पूरा शरीर वराह पषु जैसा दिखाया गया है। ऐसा ही एक मूर्ति एरण में मिली है इस पर हूण शासक तोरमाण का लेख

उत्कीर्ण है। पशु–रूप में वराह की इस विशाल मूर्ति में ओज, भाव एवं घनत्व है। इस मूर्ति में पैरों का मोटापन तथा भारीपन है। जो इसके सौन्दर्य का नकारात्मक तत्व है। विष्णु की एक मूर्ति नरसिंह अवतार की है जो देवगढ़ के मन्दिर से मिली है। इस मूर्ति में मानव–शरीर तथा सिंह के सिर से युक्त शंख, चक्र एवं गदाधारी विष्णु आसन पर बैठे दिखाये गये हैं। वामन अवतार के अनेक रूपों में वामन तथा त्रिविक्रम दोनों रूपों की मूर्तियों को इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित वामन मूर्ति में पुराण कथा के रूप में एक बौने ब्रह्मचारी के सरल रूप में दिखाया गया है। मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित दो त्रिविक्रम मूर्तियों में एक दाहिना पैर भूमि पर तथा बाँया कन्धा तक ऊपर की ओर उठा हुआ प्रस्तुत किया गया है, इसमें शिल्पकार ने विष्णु द्वारा पैरों से पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष को नापने की पौराणिक कथा को मूर्ति के माध्यम से दिखाया गया है।[11]

राम तथा कृष्ण की मूर्तियों का सृजन की गुप्तों के समय के शिल्पियों द्वारा किया गया। उदाहरणार्थ देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में कुछ राम कथा के प्रसंगों को दिखाया गया है। जैसे राम के द्वारा अहिल्या का उद्धार, राम का वनवास, अगस्त्य के आश्रम का दर्शन एवं लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का नाक को काटनाच्छेदन आदि दृष्यों को प्रस्तुत किया गया है। इस देवालय में कृष्ण के जीवन से जुड़े दृष्यों में वासुदेव द्वारा गोकुल को ले जाते हुए कृष्ण, कालिनाग का दमन, तथा गोवर्धनधारी के रूप में कृष्ण का कलात्मक प्रस्तुतीकरण हुआ है। मथुरा तथा राज्य संग्रहालय, लखनऊ में कृष्ण की दो आकर्षक मूर्तियाँ प्रदर्षित की गई हैं। इन मूर्तियों में कथाओं के सन्दर्भों को प्रस्तुत किया गया है। इन मूर्तियों में धार्मिक सद्भावना के दर्शन भी होते हैं।

गुप्तों के समय की शिव–मूर्तियों में उनको लिंग तथा मानवीय रूपों का सन्दर्भ है। जैसे खोह और भूमरा से प्राप्त एकमुखी लिंग रूप मूर्तियों के प्रदर्षन में सिर पर जटा–जूट, जिस पर अर्ध–चन्द्र तथा गले में एकावली एवं माथे पर तीसरे नेत्र को प्रदर्षित किया गया है। करमदण्डा के शिवलिंग का नीचे का भाग अष्टकोणीय है। अधो भाग की संरचना गोलाई युक्त है। मथुरा संग्रहालय में प्रदर्षित दो मूर्तियों में शिव का अर्धनारीश्वर रूप मिलता है। मूर्तियों में दाहिना भाग पुरूष का तथा बांया भाग नारी है। विदिशा से मिली तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्षित शिव की हरिहर मूर्ति के बाईं ओर विष्णु के आयुधों का प्रदर्षन है। दाहिने ओर शिव भाग में जटाधारी शिव को दिखाया गया है। धार्मिक समन्वय की रचना है। हिन्दुओं के मंगलकारी देव गणेश की मूर्तियों में भी पौराणिक मान्यताओं तथा कथानकों का सामंजस्य है। मथुरा संग्रहालय की ऐसी अनेक मूर्तियों में गज–मस्तक धारी गणेश का लम्बोदर रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूर्ति के बाँए हाथ में मोदक है। मथुरा मूर्ति कला में बनी हुई कमल पुष्प पर नृत्य रत गणेश मूर्ति में गणेश की सूड़ आकर्षक रूप में मुड़ी हुई है। इस मूर्ति में कमल पर नृत्य मुद्रा में गणेश को प्रदर्षित किया गया है।

कार्तिकेय की मूर्तियाँ सामरिक देवता के मथुरा तथा गान्धार कला केन्द्र में मूर्तियाँ बनाई गई। कार्तिकेय के वाहन मयूर को प्रदर्षित किया गया है। राज्य संग्रहालय, पटना में सुरक्षित ऐसी मूर्ति में सौन्दर्य तथा अनुराग स्पष्ट होता है। गुप्तयुग से पूर्व कुशाणकाल में बनी सूर्य–मूर्तियों में ईरानी परम्परा देखी जा सकती है। लम्बाकोट, शलवार तथा जूता धारण किये हुए इन मूर्तियों में प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुकूल न होकर विदेशी (ईरानी) कला–परम्परा के आधार पर निर्मित

हुई। गुप्तकाल में विदेशी तत्वों भारतीय तत्वों के साथ संयुक्त कर दिया गया। इस प्रकार पूर्व के अनेक तत्वों का भारतीयकरण कर दिया गया।

गुप्तकाल में सूर्य की मूर्तियों में अलंकरणों के लिए धोती, एकावली, कुंडल, मुकुट, वनमाला तथा हाथों में कमल धारण किए हुए दण्डी और पिंगल के रूप में प्रदर्षन किया गया है। सूर्य की रथ पर विराजमान मूर्तियों के दोनों हाथों में कमल पुष्प हैं। साथ ही पार्ष्व में उषा, प्रत्युषा, राक्षी और निक्षुथा जैसी देवियाँ एवं सारथी अरुण भी चित्रित किया गया है। भूमरा से मिली मूर्ति में दिव्यता का भाव प्रस्तुत करने के लिए वृत्ताकार प्रभामण्डल को कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। सूर्य के दोनों पार्श्व में दण्डी और पिंगल है।

गुप्तों के समय की मथुरा से प्राप्त दुर्गा मूर्ति में अपने जंघा पर स्कन्द कार्तिकेय को बिठाये हुए देवी की मुद्रा मातृत्व के भाव से ओत प्रोत है। दुर्गा के महिशासुरमर्दिनी रूप को भी मूर्तियों में प्रस्तुत उदयगिरी की गुफा–मूर्ति में महिशासुर का दमन करती देवी की मुख–मुद्रा को क्रोधावेष रूप में किया गया है। अलंकरण के प्रयोग के लिए बाण, आयुध, वज्र, क्षेत्र हैं। बायें हाथ में गोध, ढाल एवं झाडू का अंकन हैं। भूमरा की मूर्ति में देवी को एक हाथ में पकड़े भाले से नीचे पड़े महिशा दैत्य का वध करते दिखाया गया है।[12]

संदर्भ

1. कनिंघम, एलेक्जेंडर. कार्पस इन्सक्रियशन्स इंडीकैरम. वाल्यूम–III. पृष्ठ **32–33, 262–63, 272–74.**
2. स्मिथ, वी0ए0. अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया. पृष्ठ **324.**
3. मजूमदार, आर0सी0. एनशियंट इण्डिया. पृष्ठ **489.**
4. उपाध्याय, वासुदेव. (1982). प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान. चौखम्बा विद्या भवनः वाराणसी. पृष्ठ **51.**
5. कासलीवाल, मीनाक्षी. (2016). भारतीय मूर्ति शिल्प एवं स्थापत्य कला. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. पृष्ठ **101.**
6. श्रीवास्तव, ब्रजभूशण. (2010). प्राचीन भारतीचय प्रतिभा विज्ञान एवं मूर्ति कला. विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृष्ठ **349.**
7. पांडे, जय नारायण. (1988). भारतीय कला तथा पुरातत्व. प्राच्य विद्या संस्थानः इलाहाबाद. पृष्ठ **156.**
8. सहाय, शिवस्वरूप. (2011). प्राचीन भारतीय मूर्ति कला स्टूडेन्टस् फ्रेंडसः इलाहाबाद. पृष्ठ **185.**
9. सिंह, वी0पी0. भारतीय कला को बिहार की देन. पृष्ठ **113.** चित्र सं0–62.
10. एन0आर0रे0. आइडिया इमेज इन इंडियन आर्ट. चित्र–20.
11. कुमारस्वामी, ए0के0. हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट. चित्र– **42,181.**
12. कनिघंम. आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया. रिपोट्स नं0 70. पृष्ठ **14–15.** वी0एस0 अग्रवाल, गुप्ता. पृष्ठ **16.**